एलजीबीटी अधिकार और धारा 377

drishtiias.com/hindi/printpdf/lgbt-rights-and-sections-377

वर्ष 2016 में आई फिल्म 'अलीगढ़' में एक दृश्य है जिसमें मनोज वाजपेयी अपने चेहरे पर शून्यता का भाव लिये कहते हैं-'दिस इज़ ब्यूटीफुल वर्ल्ड'। सच में यह दुनिया बहुत खूबसूरत और सतरंगी है, लेकिन यह माना जाता रहा है कि धारा 377 जैसे कुछ कानूनों ने इसे बदरंग बनाने का काम किया है। दरअसल हम बात कर रहे हैं एलजीबीटी (lesbian, gay, bisexual, and transgender) अधिकारों की। विदित हो कि भारतीय दंड संहिता (Indian penal code) की धारा 377 के तहत समलैंगिकता को अपराध मानते हुए कार्रवाई की जाती है।

हाल ही में निजता के अधिकार को मूल अधिकार बनाने संबंधी न्यायालय के निर्णय के बाद धारा 377 एक बार फिर से चर्चा में है। एलजीबीटी अधिकारों के लिये संघर्षरत कार्यकर्त्ताओं द्वारा जहाँ लंबे समय से धारा 377 को खत्म करने की माँग की जा रही है वहीं सरकार अधिकांश मौकों पर इसके पक्ष में नज़र आई है। आज हम वाद, प्रतिवाद और संवाद के माध्यम से इस पूरे मामले को समझने का प्रयास करेंगे।

वाद

- धारा 377 जिसे "अप्राकृतिक अपराध" (unnatural offences) के नाम से भी जाना जाता है, को 1857 के विद्रोह के बाद औपनिवेशक शासन द्वारा अधिनियमित किया गया था।
- दरअसल, उन्होंने अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर हमारे लिये कानून बनाया। तब ईसाइयत में समलैंगिकता को अपराध माना जाता था जबकि इससे पहले समलैंगिक गतिविधियों में शामिल लोगों को भारत में दंडित नहीं किया जाता था।
- अदालतों ने धारा 377 की कई बार व्याख्या की है और उन व्याख्याओं से निकलने वाला सामान्य सा निष्कर्ष यह है कि 'धारा 377 में गैर-प्रजनन यौन कृत्यों और यौन विकृति के किसी भी कृत्य को दण्डित करने का प्रावधान है।
- दरअसल, धारा 377 में गैर-प्रजनन यौन कृत्यों यानी अप्राकृतिक यौन संबंधों जैसे गुदा मैथुन (sadomy), ओरल सेक्स आदि को अपराध माना जाता है और दण्डित करने का भी प्रावधान है।
- यह धारा विशेष रूप से एलजीबीटी समुदाय (lesbian, gay, bisexual, and transgender community) के लोगों की चिंताओं का कारण इसलिये है, क्योंकि उनके मध्य स्थापित होने वाले संबंधों को अप्राकृतिक ही माना जाता है।
- 'नाज़ फाउंडेशन' ने वर्ष 2001 में दिल्ली उच्च न्यायालय से धारा 377 को गैर-संवैधानिक घोषित करने की मांग की थी। उच्च न्यायलय ने कहा कि:

→ आपसी सहमति से स्थापित यौन संबंधों का अपराधीकरण न केवल लोगों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार को नकारना है, बल्कि यह भेदभावपूर्ण भी है।
→ समलैंगिकों को धारा 377 की वज़ह से ही समाज अपराधी के तौर पर देखता है, जो कि बेहद चिंताजनक है।

- नाज़ फाउंडेशन मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निर्णय के बाद समलैंगिक समुदाय को राहत तो मिली, लेकिन ज़्यादा दिन तक यह स्थिति बनी नहीं रह सकी।
- दिसंबर 2013 में 'सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज़ फाउंडेशन' मामले में फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को पलटते हुए दोबारा इस धारा को इसके मूल स्वरुप में ला दिया।
- दरअसल समस्या इसलिये और गंभीर हो गई है, क्योंकि धारा 377 के प्रावधानों का सहारा लेते हुए समलैंगिकों को उनके अधिकारों से वंचित किया जा रहा है।
- हाल ही में निजता को मूल अधिकार बनाए जाने के मामले की सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय ने कहा कि 'सुरेश कौशल' मामले में निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार मानते हुए सुनवाई नहीं की गई थी।
- अतः यह माना जा रहा है कि 'सुरेश कौशल' मामले की संवैधानिकता को चुनौती देने वाले किसी मामले के बस नज़र में आने भर की देर है और सर्वोच्च न्यायालय इसे प्रभावहीन बना देगा।
- विदित हो कि 'सुरेश कौशल' मामले में निर्णय आने का बाद से ही बड़ी संख्या में ऐसे मामले सामने आए हैं, जहाँ समलैंगिकों को उनके परिचितों और पुलिस द्वारा ब्लैकमेल किया जा रहा है। पिछले तीन वर्षों में इस तरह के मामलों की संख्या कुछ ज़्यादा ही बढ़ गई है।
- दरअसल, समाज की मानसिकता ऐसी है कि समलैंगिकों को अपमान और भयानक तनाव से गुजरना पड़ा है। ब्रिटिशर्स जिन्होंने कि इस कानून लागू किया, उन्होंने 1960 के दशक में ही इससे छुटकारा पा लिया।
- हालाँकि, अधिकांश लोगों को ब्रिटिश हुकूमत से आज़ादी मिल गई, लेकिन एलजीबीटी समुदाय धारा 377 के कारण अभी भी गुलाम रहने को अभिशप्त है। अतः यह ज़रूरी है इस कानून को ज़ल्द से ज़ल्द खत्म किया जाए।

प्रतिवाद

- धारा 377 एक औपनिवेशिक विरासत होने के नाते गहन आलोचना का विषय रहा है। माना जाता है कि यह एक ऐसा कानून है जिसका पुलिस द्वारा दुरुपयोग किया जाता है और जो व्यक्ति की चयन करने की स्वतंत्रता के खिलाफ है। किसी कानून का केवल दुरुपयोग किया जाना ही उस कानून को खत्म करने का आधार नहीं बन सकता है।
- नाज़ फाउंडेशन मामले में दिल्ली उच्च न्यायलय ने भले ही इस कानून को कुछ मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाला माना था, लेकिन साथ में यह भी कहा था कि असहमति के बावज़ूद अप्राकृतिक यौनाचार और नाबालिग के साथ सहमति या असहमति से स्थापित अप्राकृतिक यौन संबंधों को इस धारा के अंतर्गत अपराध माना जाएगा।
- सभी धर्मों में समलैंगिकता को पाप माना गया है। इसे प्रकृति के आदेश के विरुद्ध आचरण माना गया है और ऐसा करने वाला व्यक्ति अपराधी माना जाता है। हालाँकि, 19वीं शताब्दी के अंत में एक मज़बूत राय सामने आई कि यह एक बीमारी है और किसी व्यक्ति को इसके लिये दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिये।
- अभी कुछ दशकों पहले इस अवधारण को बल मिला है कि कुछ लोगों में समान लिंग के व्यक्तियों के प्रति आकर्षण एक जन्मजात लक्षण है| अतः यह न तो अनैतिक है और न ही कोई बीमारी है। हालाँकि अभी भी लोगों में इस बात को लेकर मतभेद है और कोई इसे धर्म-विरुद्ध आचरण मानता है तो कोई अनैतिक।

संवाद

- अपने घर के चहारदीवारी के अन्दर कोई व्यक्ति क्या करता है इसमें किसी का भी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति अपने पसंद का जीवन जीने के लिये स्वतंत्र है।
- हालाँकि उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपने पसंदीदा आचरण का विज्ञापन करे, जिससे कि अन्य लोग प्रभावित हों। समलैंगिक होना एकदम ठीक बात है लेकिन समलैंगिकता का खुलेआम प्रदर्शन वर्जित होना चाहिये।
- भारत में समलैंगिकता ही नहीं बल्कि यौन संबंधी आचरण को भी धर्म के नज़रिये से देखा जाता है। प्रायः सभी धर्मों में विवाह-पूर्व और समलैंगिक यौन संबंधों की मनाही है। लेकिन हम एक सभ्य और गणतांत्रिक देश में रह रहें हैं, जहाँ संविधान के कायदे कानून लागू होते हैं न की किसी धर्म के।

- संविधान ने हमें यह मौलिक अधिकार दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसंद के हिसाब से जीवन जीने को स्वतंत्र है और किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह औरों के व्यक्तिगत जीवन में ताक-झाँक करे।
- दरअसल, समलैंगिकता को धर्म के चश्मे से नहीं, बल्कि संविधान में निहित सिद्धांतों के आलोक में देखा जाना चाहिये और ये सिद्धांत एलजीबीटी समुदायों को भी एक आम भारतीय नागरिक को प्राप्त सभी अधिकार दिये जाने पर जोर देते हैं।
- हालाँकि इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई कुछ भी कर सकता है, जिस तरह से एक माँसाहारी व्यक्ति किसी शाकाहारी के ऊपर माँसाहार नहीं थोप सकता, ठीक उसी तरह समलैंगिकता भी थोपी नहीं जानी चाहिये। भाव यह होना चाहिये कि 'कोई समलैंगिक नहीं है, ठीक है; कोई समलैंगिक है, यह भी ठीक है'।

निष्कर्ष

> दरअसल, वाद-प्रतिवाद और संवाद के तहत वर्णित सभी बिन्दुओं के निहितार्थ समलैंगिकता को ज़ायज़ या नाज़ायज़ मानने से संबंधित हैं। यहाँ एक अहम् सवाल यह है कि क्या धारा 377 के खत्म हो जाने से भारत में एलजीबीटी अधिकार अपनी परिणिति को प्राप्त होंगे? क्या इसके खत्म होने से लोग निजता का सम्मान करने लगेंगे? क्या धारा 377 किसी अन्य रूप में आवश्यक भी है? निम्नलिखित कुछ बिन्दुओं के माध्यम से हम इन सवालों का उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे।

1. दरअसल धारा 377 व्यक्ति की यौन-आचरण से संबंधित है। इसके प्रावधान कुछ ऐसे हैं कि समलैंगिकों के विरुद्ध इसका दुरुपयोग आसान हो जाता है। इसमें कोई शक नहीं है कि इस धारा के खत्म हो जाने से समलैंगिको को कम प्रताड़ित किया जाएगा, लेकिन असली सुधार तब आएगा जब समाज की मानसिकता में बदलाव देखने को मिलेगा।
2. ट्रांसजेंडर्स राइट्स को लेकर हम असंवेदनशील हैं, उन्हें न तो ठीक से शिक्षा मिलती है और न ही नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व। हाल ही में कई ऐसे मामले भी सामने आए हैं जब कॉर्पोरेट कंपनियों ने समलैंगिक कर्मियों को सेवानिवृत्त भी कर दिया है। अतः धारा 377 को खत्म किये जाने से ही बदलाव ला पाना कठिन हो सकता है।
3. निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने के न्यायालय के हालिया निर्णय के बाद अब धारा 377 को लेकर जब भी सुनवाई होगी, इस फैसले का व्यापक प्रभाव देखने को मिलेगा।
4. निर्दोष बच्चों और अप्राकृतिक यौन संबंधों के प्रत्ति असहमति ज़ाहिर करने वाली महिलाओं को इस तरह के आचरण से बचाने के लिये धारा 377 जैसे कानून का अस्तित्व में बने रहना आवश्यक है, लेकिन यह कानून इतना पुराना है कि बदली हुई ज़रूरतों के अनुरूप इसका प्रयोग करना कई तरह की विसंगतियों को जन्म देने वाला है।
5. अतः विधायिका को चाहिये कि इस संबंध में उचित कानूनी प्रयास करे। हालाँकि न्यायपालिका के हालिया रुख को देखते हुए धारा 377 का जाना तय है, जो कि कई मायनों में सही भी है।

- विदित हो कि धारा 377 को संवैधानिक बताने वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि 'संसद ही इसे हटाना ही नहीं चाहती'। न्यायालय ने जिक्र किया था कि '1950 के बाद से भारतीय दंड संहिता में लगभग 30 बार संशोधन हो चुके हैं और विधि आयोग की 172वीं रिपोर्ट में तो साफ़ तौर पर धारा 377 को हटाने की बात भी कही गई है, लेकिन संसद ने फिर भी इस धारा को नहीं हटाया है। न्यायपलिका ने तब इसे विधायिका की ज़िम्मेदारी बताया था।
- लेकिन वर्ष 2013 में इस निर्णय के आने के बाद से अब तक 4 साल हो चुके हैं। आज न्यायिक सक्रियता बढ़ी हुई है, अब जब सुप्रीम कोर्ट ने यह निश्चित कर दिया है कि 'कोई व्यक्ति अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर क्या करता है, इससे राज्य का कोई लेना-देना नहीं है और यह उसकी निजी पसंद का मामला है' तो यह देखना दिलचस्प होगा कि धारा 377 में क्या बदलाव आता है?
- जहाँ तक समलैंगिकता का सवाल है तो इसे वैध बनाने के विचार से असहमति रखने वाले लोग यह तर्क देते हैं कि यह समाज के नैतिक मूल्यों के खिलाफ है। हालाँकि इसके पक्ष में तर्क देने वालों का मानना है कि नैतिकता, नागरिकों के मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित करने का आधार नहीं बन सकती।

- दरअसल, किसी कृत्य के वैधानिक तौर पर गलत होने का निहितार्थ यह है कि वह नैतिक तौर पर भी गलत है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि जो नैतिक तौर पर गलत है वह वैधानिकता की दृष्टि से भी गलत हो। नैतिक तौर पर गलत कृत्य तभी वैधानिक तौर पर गलत हो सकता है, जब यह समाज को प्रभावित करता हो।